जाति-संरचना पर संस्कृतिकरण का प्रभाव

डॉ. अंजना वर्मा

सहायक आचार्य समाजशास्त्र

बाबू शोभाराम राजकीय कला महाविद्यालय अलवर (राज.)

शोध सारांश:

ग्रामीण जाति-व्यवस्था में परिवर्तन की प्रक्रिया को प्रो. श्रीनिवास ने संस्कृतिकरण की अवधारणा की सहायता से स्पष्ट किया है । परम्परागत ग्रामीण समुदाय में जातीय आधार पर एक ऐसा संस्तरण पाया जाता था जिसमें अनेक प्रकार के निषेधों द्वारा प्रत्येक जाति अपने आचरणों अथवा व्यवहार-प्रतिमानों में एक-दूसरे से पृथक् थी तथा किसी भी जाति को दूसरी जाति की जीवन-शैली का अनुकरण करने की अनुमति प्राप्त नहीं थी । संस्कृतिकरण की प्रक्रिया के माध्यम से प्रो. श्रीनिवास ने यह स्पष्ट करने का प्रयत्न किया कि जातिगत कठोरता के होते हुए भी जाति-व्यवस्था के अन्तर्गत परिवर्तन की प्रक्रिया सदैव विद्यमान रही है । संस्कृतिकरण की प्रक्रिया के रूप में निम्न जातियाँ सदैव अपने से उच्च जातियों के व्यवहार - प्रतिमानों अथवा उनकी जीवन-शैली का अनुकरण करती रही हैं। जिस क्षेत्र में जो प्रभु जाति होती है उसी को श्रेष्ठ मानकर अन्य जातियाँ उसका अनुकरण करने लगती हैं। इस प्रकार अनुकरण का प्रतिमान केवल ब्राह्मण जातियाँ ही नहीं होतीं बल्कि क्षत्रिय एवं वैश्य जातियाँ भी होती हैं। इस प्रक्रिया के अन्तर्गत निम्न जातियों के व्यक्ति अपने नामों, वेश-भूषा, व्रत-त्यौहारों, कर्मकाण्डों तथा शिष्टता के तरीकों में उच्च जातियों की दिशा में परिवर्तन करने लगती हैं जिसके फलस्वरूप जातिगत पृथक्ता तथा निषेधात्मक कट्टरता में कमी होने लगती है ।

शब्द कुंजी: संस्कृतिकरण, संस्तरण, प्रभु जाति, जीवन-शैली, जाति-संरचना, व्यवहार – प्रतिमान।

अध्ययन के उद्देश्य - ग्रामीण समाज की जाति-संरचना पर संस्कृतिकरण के सकारात्मक और नकारात्मक प्रभावों का अध्ययन करना।

प्रस्तावना

संस्कृतिकरण की प्रक्रिया के अन्तर्गत स्थानीय प्रभु जाति को आदर्श मानकर यदि कोई निम्न जाति उसकी जीवन-शैली के अनुरूप अपनी जीवन-शैली में परिवर्तन करना आरम्भ करती है तो कभी-कभी गाँवों में इसके कारण निम्न जातियों को अनेक प्रकार की कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। जातीय श्रेष्ठता, सामजिक पृथक्ता पर ही आधारित होती है, इस कारण प्रभु जातियाँ निम्न जातियों द्वारा किये जाने वाले अनुकरण को अक्सर सहन नहीं करतीं और इस कारण उन्हें ऐसा करने से रोकती हैं। इसके पश्चात् भी प्रभु जातियों द्वारा निम्न जातियों पर लगाये गये प्रतिबन्धों की यह प्रक्रिया लम्बे

समय तक नहीं चल पाती और कुछ समय पश्चात् निम्न जातियाँ अपनी स्थिति में कुछ न कुछ परिवर्तन अवश्य कर लेती हैं । उदाहरण के लिए, सन् 1936 में पूर्वी उत्तर प्रदेश के सोनापुर गाँव में नोनियों (एक निम्न जाति) ने जब सामूहिक रूप से जनेऊ पहनना आरम्भ किया तो जमींदारों ने न केवल उनके जनेऊ तोड़ कर फेंक दिये वरन् उनकी पिटाई भी कर दी परन्तु कुछ वर्ष बाद जब नोनियों ने पुनः जनेऊ धारण करना आरम्भ किया तो जमींदारों द्वारा उनका कोई विरोध नहीं किया गया ।

इससे स्पष्ट होता है कि उच्च जातियाँ अथवा प्रभु जातियाँ दूरी को बनाये रखने के लिए आरम्भ में निम्न जातियों पर कुछ प्रतिबन्ध अवश्य लगाती हैं लेकिन कुछ समय पश्चात् यह प्रतिबन्ध ढीले पड़ने लगते हैं और फलस्वरूप ग्रामीण जाति-संरचना में परिवर्तन के तत्व स्पष्ट होने लगते हैं । भारत में स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् सभी निम्न जातियों को संवैधानिक संरक्षण मिल जाने के कारण उन्हें उच्च जातियों की जीवन-शैली का अनुकरण करने के पर्याप्त अवसर प्राप्त हो गये हैं। आज कोई भी जाति किसी भी जाति को आदर्श प्रतिमान मानकर अपनी जीवन-शैली को उसी के अनुसार परिवर्तित कर सकती है । इसके पश्चात् भी ग्रामीण जीवन में यह तथ्य विशेष महत्वपूर्ण है कि संस्कृतिकरण की प्रक्रिया में यदि कोई निम्न जाति उच्च जाति को आदर्श मानकर अपनी जीवन शैली में परिवर्तन करती है और कुछ समय पश्चात् उच्च जाति के समान ही स्थिति प्राप्त कर लेने का दावा करने लगती है तो उसके लिए स्थानीय समाज की स्वीकृति मिलना भी आवश्यक होता है। ग्रामीण समाज आज भी अपनी प्रकृति से परम्परागत तथा रूढ़िवादी होने के कारण किसी भी जाति समूह की स्थिति में होने वाले ऐसे परिवर्तन को साधारणतया मान्यता प्रदान नहीं करता । इसके फलस्वरूप गाँव की निम्न जातियाँ अपने व्यवहार प्रतिमानों में उच्च जातियों के अनुरूप परिवर्तन करने के पश्चात् भी अपनी जातीय स्थिति को तब तक ऊँचा नहीं उठा पातीं जब तक वे अपने मूल स्थान को छोड़कर किसी अन्य स्थान में जाकर न बस जायें ।

भारत के ग्रामों में संस्कृतिकरण की प्रक्रिया ने परम्परागत जाति - संरचना में कुछ लाभकारी परिवर्तन उत्पन्न करने के पश्चात् भी अनेक नवीन सामाजिक समस्याओं को जन्म दिया है। इसका तात्पर्य है कि इस प्रक्रिया ने कुछ समूहों को अपनी स्थिति में सुधार करने का प्रोत्साहन अवश्य दिया लेकिन इसके फलस्वरूप रूढ़िवादिता में पहले से भी अधिक वृद्धि हो गई । इसका कारण यह है कि प्रत्येक निम्न जाति उच्च जातियों के रूढ़िवादी कर्मकाण्डों और परम्परागत आचरणों का अनुकरण करके अपने को अधिक से अधिक पवित्र दिखाने का प्रयत्न करने लगी । इसके फलस्वरूप खान-पान, प्रायश्चित से सम्बन्धित अन्ध-विश्वासों, बाल-विवाह, दहेज-प्रथा तथा स्त्रियों के सीमित अधिकार जैसी समस्याएँ जो पहले उच्च जातियों तक ही सीमित थीं, उनका प्रसार निम्न जातियों में भी हो गया ।

वर्तमान युग में संस्कृतिकरण की प्रक्रिया ने ग्रामीण जीवन को दो रूपों में अधिक प्रभावित किया है। एक ओर निम्न जातियों के व्यक्तियों में गाँव से नगरों में आकर स्वयं को उच्च जाति का सदस्य

घोषित करना और इस प्रकार उच्च जातियों से निकटता बढ़ाने की प्रवृत्ति में वृद्धि होना है तो दूसरी ओर देहातों के नवयुवकों द्वारा शहरी जीवन पद्धति को अपनाकर अपनी प्रतिष्ठा को बढ़ाने की मनोवृत्ति को विकसित करना है । इन दोनों ही दशाओं से विभिन्न जातियों के बीच पारस्परिक निकटता अवश्य बढ़ी है लेकिन इससे ग्रामीण जीवन की विशेषताओं में ह्रास की समस्या भी उत्पन्न हुई है । जातीय स्थिति में परिवर्तन की मनोवृत्ति के कारण अब निम्न जातियों के बहुत से युवक गाँव में कृषि कार्य को छोड़कर नगरों में मामूली नौकरी ढूँढ़ने का प्रयत्न करते हैं । सामाजिक व्यवस्था में उच्च स्थिति प्राप्त करने के लिए अब निम्न जातियों में भी शिक्षा का तेजी से प्रसार हो रहा है। इस प्रकार इसमें कोई सन्देह नहीं है कि संस्कृतिकरण की प्रक्रिया के कारण ही निम्न जातियों की शक्ति और प्रतिष्ठा बढ़ी है तथा, जैसा कि डॉ. श्रीनिवास का कथन है, "यह प्रतिष्ठा ब्राह्मण और राजपूत जैसी उच्च जातियों की प्रतिष्ठा को गिरा कर बढ़ी है ।" इस कथन से भी यह स्पष्ट होता है कि संस्कृतिकरण की प्रक्रिया आधुनिक भारत में ग्रामीण जाति-संरचना में परिवर्तन उत्पन्न करने का एक महत्वपूर्ण माध्यम सिद्ध हुई है ।

ग्रामीण जाति-संरचना के सन्दर्भ में संस्कृतिकरण का प्रभाव अन्य रूप में भी स्पष्ट हुआ है । जब प्रत्येक जाति-समूह ने अपने से उच्च जातियों के व्यवहारों का अनुकरण करना आरम्भ कर दिया तो सभी द्विज जातियों के कर्मकाण्डों तथा व्यवहार प्रतिमानों के बीच की भिन्नता काफी कम होने लगी । उनके व्यवहारों में आज पहले की अपेक्षा कहीं अधिक समानता परिलक्षित होती है । निम्न जातियों ने भी उच्च जातियों के व्यवहारों का अनुकरण करना आरम्भ किया लेकिन उच्च जातियों से उनकी सामाजिक पृथक्ता आज भी इसलिए बनी हुई है कि द्विज जातियों ने निम्न जातियों को अनुकरण की स्वीकृति प्रदान नहीं की। इसके पश्चात् भी वास्तविकता यह है कि संस्कृतिकरण की प्रक्रिया के अन्तर्गत आज केवल निम्न जातियों ने ही उच्च जातियों के व्यवहार प्रतिमानों का अनुकरण नहीं किया है बल्कि उच्च जातियाँ भी असंस्कृतिकरण के रूप में निम्न जातियों की जीवन-शैली की अनेक विशेषताओं को ग्रहण कर रही हैं । इसका तात्पर्य यह है कि आज ग्रामीण क्षेत्रों में जाति-परिवर्तन की प्रक्रिया अधोगामी (downward) एवं ऊर्ध्वगामी (upward) दोनों रूपों में विद्यमान है। इस दृष्टिकोण से यह आवश्यक है कि ग्रामीण जाति-संरचना में संस्कृतिकरण के प्रभाव को स्पष्ट करने के साथ ही असंस्कृतिकरण की प्रक्रिया के प्रभाव को भी स्पष्ट किया जाय ।

असंस्कृतिकरण का जाति संरचना पर प्रभाव

व्यावहारिक रूप से आज हमारे समाज में केवल संस्कृतिकरण की प्रक्रिया ही क्रियाशील नहीं है बल्कि एक ऐसी प्रक्रिया भी स्पष्ट हो रही है जिसमें उच्च जाति के लोग जान-बूझकर अथवा अनजाने में निम्न जातियों के व्यवहार - प्रतिमानों, रहन-सहन एवं खान-पान के तरीकों का अनुकरण कर रहे हैं । इस दूसरी स्थिति को ही हम असंस्कृतिकरण (desanskritization) कहते हैं। डॉ. डी. एन. मजूमदार ने मोहाना गाँव का अध्ययन करते समय यह पाया कि निम्न जतियों में साधारणतया उच्च जातियों की

जीवन-शैली अपनाने की अधिक प्रवृत्ति नहीं पाई जाती और न ही इस परिवर्तन के फलस्वरूप किसी भी निम्न जाति की स्थिति ऊँची उठी है। मजूमदार का विचार है कि यदि हम भारतीय ग्रामीण सामाजिक संरचना का सूक्ष्म अवलोकन करें तो ऐसा प्रतीत होता है कि यहाँ संस्कृतिकरण की तुलना में असंस्कृतिकरण की प्रक्रिया अधिक क्रियाशील है। असंस्कृतिकरण संस्कृतिकरण की विरोधी प्रकिया है जिसके अन्तर्गत उच्च जातियाँ निम्न जातियों की जीवन-शैली को अपना रही हैं और अपने परम्परागत व्यवहार - प्रतिमानों को छोड़ती जा रही हैं। उदाहरण के लिए, भारतीय सामाजिक संस्तरण में ब्राह्मणों का कार्य अध्ययन, अध्यापन, यज्ञ तथा धार्मिक क्रियाओं को करना था परन्तु आज बहुत-से ब्राह्मण चमड़े, शराब तथा बीड़ी बनाने जैसे अनेक उन व्यवसायों के द्वारा आजीविका उपार्जित करने लगे हैं जिन कार्यों को जाति-व्यवस्था के अन्तर्गत वे पहले नहीं कर सकते थे । इसी प्रकार माँस और मदिरा का प्रयोग, जो पहले केवल निम्न जातियों द्वारा किया जाता था, अब ब्राह्मण और दूसरी उच्च जातियों के द्वारा भी किया जाने लगा है। कृषि कार्य जो पहले किसान जातियों के द्वारा ही किया जाता था आज सबसे अधिक ब्राह्मण एवं राजपूत जातियों के द्वारा किया जा रहा है। इससे स्पष्ट होता है कि गाँव में आज निम्न जातियाँ उच्च जातियों की जीवन-शैली का उतना अधिक अनुकरण नहीं कर रही हैं जितना अधिक अनुकरण उच्च जातियों द्वारा निम्न जातियों की जीवन-शैली का किया जा रहा है।

संस्कृतिकरण की विवेचना में यह ध्यान रखना आवश्यक है कि यह प्रक्रिया केवल हिन्दू जातियों तक ही सीमित नहीं है बल्कि अनेक जनजातियों एवं अर्द्ध जनजातियों में इस प्रक्रिया का आरम्भ हो चुका है । यदि कोई जनजाति हिन्दू जीवन-शैली को अपनाकर स्वयं को हिन्दू जाति-व्यवस्था के साथ जोड़ना आरम्भ कर दे तो इस प्रक्रिया को हम संस्कृतिकरण कहते हैं परन्तु कभी-कभी ऐसा भी होता है कि एक हिन्दू जाति कुछ समय तक किसी जनजातीय क्षेत्र में रहने के कारण अक्सर जनजातियों के रीति-रिवाजों, कर्म-काण्डों, खान-पान के तरीकों एवं जीवन-शैली को ग्रहण करने लगती है। इस स्थिति में यह प्रश्न उठना स्वाभाविक है कि परिवर्तन की इस प्रक्रिया को किस नाम से सम्बोधित किया जाय ? एस. एल. कालिया ने अपने अध्ययन के द्वारा पाया कि उत्तर प्रदेश के जौनसार बावर एवं मध्य प्रदेश के बस्तर क्षेत्र में रहने वाली जनजातियों के सम्पर्क में आने वाली अनेक हिन्दू जातियों ने उस क्षेत्र की जनजातियों के रीति-रिवाजों, कर्मकाण्डों तथा व्यवहार प्रतिमानों को अपनाना आरम्भ कर दिया । जौनसार बावर क्षेत्र में जो ब्राह्मण खस जनजाति के सम्पर्क में आते हैं वे माँस और शराब के सेवन के साथ ही जनजातीय स्त्रियों से अपने सम्बन्ध भी रखते हैं और जब कुछ समय पश्चात् वे पुनः अपने क्षेत्र में लौटते हैं तो इन व्यवहारों को भी छोड़ देते हैं । सुविधा के लिए इस प्रक्रिया को 'जनजातीयकरण' (tribalisation) भी कहा जा सकता है लेकिन 'वास्तव में यह प्रक्रिया असंस्कृतिकरण की प्रक्रिया है जो किसी न किस रूप में प्रत्येक उच्च जाति के जीवन को प्रभावित कर रही है। इस सम्पूर्ण विवेचना से स्पष्ट होता है कि संस्कृतिकरण की प्रक्रिया सम्पूर्ण जाति-संरचना को सदैव एक

पक्षीय रूप से प्रभावित नहीं करती बल्कि असंस्कृतिकरण के रूप में यह प्रभाव सदैव द्विपक्षीय होता है स्थिति चाहे संस्कृतिकरण की हो अथवा असंस्कृतिकरण की, इन दोनों प्रक्रियाओं ने निश्चय ही परम्परागत जाति - संरचना के प्रकार्यात्मक पक्ष को बदलने के साथ ही इसकी संरचनात्मक विशेषताओं में भी अनेक परिवर्तन उत्पन्न किये हैं ।

संस्कृतिकरण के प्रभाव का मूल्यांकन

प्रो. श्रीनिवास ने जिस रूप में संस्कृतिकरण की प्रक्रिया को सामाजिक- सांस्कृतिक गतिशीलता के सर्वप्रमुख आधार के रूप में प्रस्तुत किया है, उससे अनेक विद्वान पूर्णतया सहमत नहीं हैं । यही कारण है कि इस अवधारणा से सम्बन्धित अनेक नई अवधारणाओं को विकसित किया गया है जिससे डॉ. श्रीनिवास के विवेचन को अधिक सार्थक और व्यावहारिक रूप दिया जा सके। प्रो. श्रीनिवास को स्वयं भी इस अवधारणा की उपयुक्तता और पूर्णता कुछ सन्देह है और इसलिए उनका मत है कि भारतीय ग्रामीण सामाजिक संरचना में होने वाली सांस्कृतिक गतिशीलता का विश्लेषण करते समय यदि यह अवधारणा उपयुक्त प्रतीत न होती हो तो इसे निःसंकोच छोड़ दिया जाना चाहिए । इस कथन का तात्पर्य यह नहीं है कि संस्कृतिकरण की अवधारणा पूर्णतया अनुपयुक्त है बल्कि इससे केवल यह संकेत मिलता हैं कि इस अवधारणा से सम्बन्धित प्रत्येक पक्ष को उचित नहीं कहा जा सकता ।

जाति-व्यवस्था में परिवर्तन की प्रक्रिया को प्रो. श्रीनिवास ने संस्कृतिकरण की अवधारणा के माध्यम से स्पष्ट करते हुए लिखा है कि इस प्रक्रिया से उत्पन्न सामाजिक गतिशीलता का स्वरूप उदय (vertical) होता है । इसका तात्पर्य है कि इस प्रक्रिया के द्वारा कोई भी निम्न जाति उच्च जाति की जीवन-शैली को अपनाकर जातीय संस्तरण में अपनी स्थिति को उच्च जातियों के बराबर ला सकती है। डॉ. डी. एन. मजूमदार इस विचार से सहमत नहीं हैं । आपने अपने अध्ययन के आधार पर यह निष्कर्ष दिया कि व्यावहारिक रूप से निम्न जातियों में उच्च जातियों की सांस्कृतिक विशेषताओं को ग्रहण करने की प्रवृत्ति बहुत कम दिखाई देती है । इसके अतिरिक्त यदि कोई निम्न जाति उच्च जाति को आदर्श मानकर अपने व्यवहारों में कुछ परिवर्तन कर भी लेती है तो इससे उसकी स्थिति उच्च जाति के समान नहीं बन पाती । उदाहरण के लिए, यदि एक हरिजन किसी ब्राह्मण को आदर्श मानकर माँस खाना, शराब पीना अथवा विधवा विवाह करना छोड़ दे और ब्राह्मण के समान ही जनेऊ धारण करके शाकाहारी और कर्म ण्डीय स्तर पर आ जाय तो भी उसे ब्राह्मण की स्थिति प्राप्त नहीं हो सकती । इससे स्पष्ट होता है कि प्रो. श्रीनिवास का यह कहना गलत है कि संस्कृतिकरण की प्रक्रिया उदय सामाजिक गतिशीलता को जन्म देती है। डॉ. मजूमदार के अनुसार, संस्कृतिकरण के फलस्वरूप यदि जातीय स्थिति में कुछ परिवर्तन होता भी है तो यह उदग्र न होकर श्रेणीबद्ध (horizontal) ही होता है। दूसरे शब्दों में, कोई भी निम्न जाति ऊपर उठकर उच्च जाति के समान नहीं बन जाती बल्कि केवल अपनी जाति के अन्तर्गत ही अपनी स्थिति में कुछ सुधार कर लेती है। इस प्रकार जातिगत गतिशीलता

के सन्दर्भ जो भी परिवर्तन होते हैं वे उद गतिशीलता के रूप में न होकर श्रेणीबद्ध गतिशीलता के रूप में ही देखे जा सकते हैं ।

कुप्पूस्वामी संस्कृतिकरण की प्रक्रिया को कोई नयी अवधारणा न मानकर सन्दर्भ समूह (reference group) की प्रक्रिया का ही एक संशोधित स्वरूप मानते हैं । सन्दर्भ समूह व्यवहार के अन्तर्गत व्यक्ति जिस समूह को सन्दर्भ मानकर अपने व्यवहारों में परिवर्तन करता है, वह समूह निश्चित रूप से परिवर्तन करने वाले समूह से श्रेष्ठ होता है । संस्कृतिकरण की प्रक्रिया में जब कोई निम्न जाति किसी उच्च जाति को आदर्श मानकर अपनी जीवन-शैली में परिवर्तन करने की बात सोचती है तो निश्चित रूप से वह निम्न जाति मानसिक रूप से स्वयं को उच्च जाति की जीवन-शैली से हीन पाती है । संस्कृतिकरण की प्रक्रिया में अक्सर उच्च जाति निम्न जातियों को अपना अनुकरण करने से रोकती है । यह स्थिति बिल्कुल वैसी ही है जैसी कि सन्दर्भ समूह व्यवहार में अनेक अन्तःसमूह तथा बाह्य समूहों के द्वारा व्यक्ति पर किसी विशेष समूह का अनुकरण करने पर नियन्त्रण लगाया जाता है। इसके अतिरिक्त सन्दर्भ समूह व्यवहार में किसी समूह को सन्दर्भ के रूप में तभी देखा जाता है जब समाज में उसकी विशेष प्रतिष्ठा हो । ठीक इसी प्रकार संस्कृतिकरण की प्रक्रिया में भी किसी जाति को केवल तभी तक आदर्श प्रतिमान के रूप में माना जाता है जब तक उस जाति की समाज में विशेष प्रतिष्ठा हो । जब कभी भी एक प्रभु जाति का स्थान दूसरी प्रभु जाति ले लेती है तो अन्य जातियों के लिए उनके अनुकरण के प्रतिमान भी बदल जाते हैं । इस दृष्टिकोण से संस्कृतिकरण की अवधारणा कोई नवीन अवधारणा नहीं है बल्कि सन्दर्भ समूह व्यवहार का ही एक विशेष उदाहरण है। इन आलोचनाओं का तात्पर्य यह नहीं है कि संस्कृतिकरण की अवधारणा पूर्णतया अनुपयुक्त है। वास्तविकता यह है कि ग्रामीण जाति - संरचना तथा सांस्कृतिक विशेषताओं में आज जो व्यापक परिवर्तन उत्पन्न हुए हैं उन्हें बहुत बड़ी सीमा तक संस्कृतिकरण की प्रक्रिया के माध्यम से समझा जा सकता है ।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1 W. F. Rowe, The New Chauhans : A Caste Mobility in North India.
2. S. L. Kalia. 'Sanskritization and Tribalisation', Bulletin of the Tribal Research Institute
3.M. N. Srinivas : Social Change in Morden India.
4. Yogendra Singh : Modernization of Indian Tradition.
5 D. N. Majumdar, Caste and Communication in an Indian Village
6. Kuppuswamy, Social Change in India,
7. T.K.N. Unnithan, Indra Dev and Yogendra Singh : Towards a Sociology of Culture in India.
8. G.K. Agrwal & S.S. Pandy : Rural Sociology